□□□□□ □□□□□

जनसत्ता 09 जुलाई, 2014 : आजादी के पहले महंगाई थी, आजादी के बाद महंगाई रही। हरित क्रांति के पहले महंगाई थी, हरित क्रांति के बाद महंगाई रही। हमेशा यही देखने में आया है कि समाज के कुछ छोटे तबके के लिए हर वक्त सस्ती रहती है और कुछ बड़ा तबका बराबर महंगाई की मार से दबा रहता है। इसको इस रूप में समझें कि अरहर की दाल आज सौ रुपए किलो बिक रही है। वह उसे मयस्सर नहीं। लेकिन वह दस-बीस रुपए सस्ती भी हो जाए तो उसकी थाली में नहीं पहुंचने वाली। क्योंकि वह तब भी उसकी पहुंच से बाहर रहेगी। इसी तरह प्याज वह पचास रुपए किलो खरीद कर खाने से रहा, पंद्रह-बीस रुपए किलो भी वह उसके लिए महंगा है। सरसों तेल के बगैर काम नहीं चल सकता, इसलिए महंगाई के बावजूद वह थोड़ा-बहुत खरीद लेता है, लेकिन घी तो उसके लिए विलासिता है।

पेट्रोल को लेकर बड़ा हंगामा रहता है। हर बार कीमत बढ़ने पर ऐसा शोर मचता है कि बस अब हमारी अर्थव्यवस्था ध्वस्त ही होने वाली है। रटा-रटाया विश्लेषण। पेट्रोल-डीजल की कीमतें बढ़ीं तो वाहनों का किराया बढ़ेगा, माल भाड़ा बढ़ेगा। तबाही ही तबाही। लेकिन मैंने कभी दाम बढ़ने के बाद पेट्रोल की बिक्री में कमी नहीं देखी। पेट्रोल की कीमत बढ़ने के साथ-साथ वाहन उद्योग साल-दर-साल सबसे अधिक फलने-फूलने वाला उद्योग है अपने देश में। नित नए मॉडल की कारें आ रही हैं। विविध किस्म की मोटर साइकलें और अन्य दो पहिया वाहन। तो क्या कहा जाए? कुछ तो महंगाई का असर दिखना चाहिए? न पेट्रोल की बिक्री कम हो रही है, न वाहनों की खरीद में कोई कमी आ रही है। आती भी है तो बहुत थोड़ी। किसी वित्तीय तिमाही में कम बिक्री हुई, दूसरे में बढ़ गई। कभी तो यह असर होता कि पेट्रोल पंप सूने नजर आते। वहां लगने वाली कतारें थोड़ी छोटी हो जातीं। पेट्रोल महंगा हो गया तो नेताओं के काफिले में वाहनों की संख्या कम हो जाती। अधिकारी कार साझा कर दफ्तर आते-जाते। कहां होता है ऐसा?

दरअसल, हमारे देश का कुछ छोटा-सा तबका कीमतों से अप्रभावित रहता है। वह अपनी जेब के पैसे से पेट्रोल खरीदता ही नहीं। इस छोटे-से तबके को और स्पष्ट करें। हम उसे संगठित क्षेत्र कह सकते हैं। हमारे सांसद-विधायक, सरकारी अधिकारी, सार्वजनिक उपक्रमों के कर्मचारी, तमाम बैंकों के कर्मचारी, सभी तो सरकारी खर्च पर पेट्रोल खरीदते हैं। तय रहता है कि आपको प्रतिमाह कितने लीटर पेट्रोल खर्च करना है या फिर वाहन भत्ता (कन्वेंस अलाउंस) है। महंगाई हुई तो महंगाई-भत्ता या फिर मूल्यवृद्धि का शत-प्रतिशत निष्प्रभावीकरण (न्यूट्रलाइजेशन)।

निजी क्षेत्र को भी इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। उनके कर्मचारियों को भी वाहन भत्ता मिलता है जो महंगाई के हिसाब से बढ़ता है। उनके यहां का तो फंडा है कि अधिकारी ज्यादा से ज्यादा उपभोग करें, क्योंकि इस तरह से जो भी खर्च होगा, उसे उत्पाद के लागत-मूल्य में जोड़ देना है। और बड़ा तबका तो अब भी साइकिल पर चलता है। सरकारी परिवहन से सफर करता है। इसलिए पेट्रोल की कीमत बढ़ने से भी उसकी मांग पर असर नहीं पड़ता। इसी तरह जो आबादी उपलों पर, कोयले पर और जंगल से बटोर कर लाई गई लकड़ियों पर खाना बनाती है, उस पर गैस की कीमतों के घटने-बढ़ने का क्या वास्तविक असर होगा।

इसके अलावा महंगाई का भी मौसम की तरह कुछ नियमित चक्र है। मीडिया इसको खूब समझता है। जैसे मार्च-अप्रैल की गरमी शुरू होते ही पानी की किल्लत का समाचार क्षेत्रीय अखबारों को सराबोर करने लगता है और बारिश होते ही बाढ़ या शहर में जलजमाव की खबरें, टूटी हुई नालियों-सड़कों के चित्र अखबार के पन्नों पर उतर आते हैं, कुछ उसी तरह सब्जियों की किल्लत की भी खबरें बनती हैं।

टमाटर, आलू, प्याज आदि अब कोल्ड स्टोरेज में रख कर उनकी कीमतों को कुछ वक्त के लिए बढ़ाया-घटाया जा सकता है। लेकिन हरी सब्जियां इससे बाहर रहती हैं। इसलिए जमाखोर इनकी कीमतों को नियंत्रित नहीं कर पाते। लेकिन गरमी और बरसात के लंबा खिंचने से सब्जियां महंगी हो जाती हैं। प्याज पर कुछ ज्यादा ही असर पड़ता है। और तब तक हो-हल्ला चलता रहता है, जब तक नई फसल बाजार में आ नहीं जाती।

फिर बीच-बीच में आने वाले पर्व-त्योहार। उस वक्त दो तरह की खबरों की प्रमुखता रहती है। एक तो महंगाई और दूसरी मिठाइयों में मिलावट की। फिर जैसे, भीषण गरमी के दिनों की पानी की किल्लत, चापाकलों की मरम्मत, जलजमाव की खबरें, पानी की किल्लत से निबटने की सरकारी घोषणाएं बारिश के साथ ठंढी पड़ जाती है अगली गरमी तक के लिए, उसी तरह नई फसल के बाजार में उतरते ही महंगाई काबू में आने लगती है और खबरें, टीवी चैनलों पर महंगाई को लेकर होने वाली खिचखिच शांत हो जाती है।

महंगाई को लेकर होने वाला विपक्षी दलों का धरना-प्रदर्शन, पुतला दहन खत्म हो जाता है, उस वक्त तक के लिए। जब एक बार फिर महंगाई अखबारों की सुर्खियां नहीं बनने लगती है। चुनाव के आगे-पीछे तो महंगाई जरूर ही चर्चा में आती है।

महंगाई को लेकर मेरा एक निजी अनुभव यह है कि जहां पैसा कम है, वहां महंगाई भी कम है। आप यकीन करेंगे, महज सात रुपए में एक प्लेट खाना मिल जाता है आज भी। सरकारी दुकानों में नहीं, खुले बाजार में। पश्चिम बंगाल का एक छोटा-सा शहर है झालदा या झालदा। वहां पशु मेला लगता है, हाट लगता है। आसपास के छोटे-मोटे किसान बैल, काड़ा या अन्य सामान खरीदने आते हैं। वहां झोपड़ीनुमा दुकानों में मोटे चावल का भात, पनीला ही सही दाल, आलू की भाजी और थोड़ी सी साग या सब्जी- महज सात-आठ रुपए में यह खाना मिल जाता है। क्योंकि इससे अधिक कीमत में भोजन उन ग्रामीणों के पुसा नहीं सकता।

इन दिनों मैं रायगढ़ा में हूं, ओड़िशा का एक छोटा शहर। यहां तीन इडली दस रुपए में और एक डोसा बीस रुपए में अब भी मिल रहा है। लेकिन मेरे अपने शहर रांची में मसाला डोसा सत्तर रुपए में और रवा डोसा अस्सी रुपए में मिलता है। सब्जियों के भाव में भी यह अंतर दिखता है। दिल्ली में जब पचास रुपए किलो प्याज मिल रहा है, उस वक्त यहां रायगढ़ा में अट्ठाईस रुपए किलो प्याज मिल जाता है। यानी जहां पैसा नहीं या कम है, वहां कीमतें कम होती हैं।

आप कहेंगे, यह तो अर्थशास्त्र का सामान्य सिद्धांत है। हम भी वही कह रहे हैं। लेकिन हम नतीजा यह निकाल रहे हैं कि अगर आमद और खर्च पर अंकुश नहीं लगाया गया, उसे काबू में नहीं रखा गया तो महंगाई भी काबू में नहीं रहने वाली। एक तरफ तो संगठित क्षेत्र में वेतन और सुविधाओं में अपार वृद्धि, दूसरी तरफ यह उम्मीद करना कि महंगाई काबू में रहेगी, एक शीर्षासन ही है। जिन लोगों के पास इफरात पैसा हो, वे वित्तीय अनुशासन में क्यों रहे? फिजूलखर्ची क्यों न करें? एक तरह से महंगाई उनके काम की है। अलफांसो आम तीस रुपए किलो बिकने लगे तो हर कोई उसे खरीदने लगेगा। फिर अमीरजादों में और एक आम आदमी में फर्क कैसे रह जाएगा?

इसलिए बहुत सारी उपभोक्ता वस्तुएं महंगी कर सामान्य लोगों की पहुंच से बाहर कर दी जाती हैं। टोपाज का एक पैकेट ब्लेड दस रुपए में बिकता है, जिससे एक महीने अच्छी शेविंग हो सकती है। लेकिन बड़े लोग जिलेट का मैक थ्री, यूज एंड थ्रो वाला रेजर इस्तेमाल करते हैं जिसके एक ब्लेड की कीमत ही दो-ढाई सौ रुपए होती है। हर क्षेत्र में योजनाबद्ध तरीके से अमीरों के लिए अलग और गरीबों के लिए अलग दुनिया बनाई जा रही है। गरीबों के बच्चों के लिए सरकारी स्कूल और अमीरों के बच्चों के लिए निजी स्कूल, सुविधाविहीन गरीबों का अस्पताल और पांचसितारा सुविधाओं से लैस अमीरों का अस्पताल, द्वितीय श्रेणी में ठुंस कर सफर करते सामान्य रेलयात्री और अमीरों का एसी क्लास।

फिर भी महंगाई के खिलाफ □ कृत्रिम युद्ध चलता रहता है- अमीरी-गरीबी की निरंतर ब□ती खाई को छिपाने के लि□, राजनीति चमकने और राजनीति में प्रासंगिक बने रहने के लि□□ सरकार सामान्यत: दो तरह की कार्रवाई करती है□ □ कतो राज्यों के जमाखोरों के खिलाफ कार्रवाई का निर्देश, दूसरे रिज़र्व बैंक की मदद से बाजार में पैसे के प्रवाह को कम करने की कोशिश□ बैंक के कर्ज पर सूद की दर को घटाने-ब□ाने की मशक्कत□ लेकिन इसका कोई खास असर नहीं होता□ इसकी □ कवजह यह है कि संगठित क्षेत्र की वेतन-सुविधा□ हाल के वर्षों में इस कदर ब□ा दी गई है कि महंगाई से उसे बहुत फर्क नहीं प□ता□ इसके अलावा इस तबके के पास प्रचुर काला धन भी मौजूद रहता है□ इसलि□ रिज़र्व बैंक के सारे उपाय बेअसर होकर रह जाते हैं□ जब देश में काले धन की समांतर अर्थव्यवस्था चल रही हो, आप पुराने तरीकों से महंगाई पर काबू कैसे पा सकते हैं?

इसका मतलब यह नहीं कि महंगाई का गरीबों पर असर होता ही नहीं□ होता है□ लेकिन उससे नबिटने के उनके अपने तरीके हैं□ □ कजमाने में प्याज गरीबों के रूखे-सूखे भोजन का हिस्सा होता था□ अब अगर गरीब के अपने बा□ में प्याज उगता नहीं तो वह प्याज की तरफ देखता ही नहीं□ आम वह भी खाता है लेकिन अलफांजो नहीं, तरह-तरह के छोटे-ब□ आम जो दस से बीस रुप□ किलो में भी बाजार में उपलब्ध रहते हैं□ उसका □ कतरीका यह भी है कि जिस मौसम में प्रकृति जो कुछ उपलब्ध करती है, उससे वह अपना पेट भरता है□ हम बात उन लोगों की कर रहे हैं जो गरीबी रेखा के आसपास हैं□

तेंदुलकर समिति के अनुसार गरीब आबादी सत्ताईस करो□ है और रंगराजन समिति के अनुसार सैंतीस करो□□ दरअसल, गरीबों की तादाद सरकारी आंक□ों के बाहर इससे भी ज्यादा है और निरंतर ब□ रही है□ महंगाई पर जिस तरह की बहस चल रही है, इस तबके के लि□ वह बेमतलब है□ और इनके लि□ महंगाई कभी कम नहीं होने वाली है अभी की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था में□

इनकी थाली में अच्छा बासमती चावल, गेहूं की रोटी, कटोरे में गा□ा दाल, हरी सब्जियां, यह व्यवस्था तथाकथित इस महंगाई को नियंत्रित कर नहीं पहुंचा सकती है□ इसलि□ महंगाई को लेकर मचने वाली हायतौबा इसे □ कचुनावी मुद्दा बना□ रखने की मशक्कत है□ अलबत्ता महंगाई अपनी यह कुव्वत खोती जा रही है□ हम महंगाई की कितनी भी बात करें, चुनाव में प्रभावी रहते हैं जातीय समीकरण, सांप्रदायिक मुद्दे□ इस तथ्य को मोदी हमसे बेहतर जानते हैं, इसलि□ वे पेट्रोल-डीजल, बिजली और अन्य उपभोक्ता वस्तुओं की ब□ती कीमतों से बेफिक्र हैं□

फेसबुक पेज को लाइक करने के लि□ क्लिक करें- https://www.facebook.com/Jansatta

ट्विटर पेज पर फॉलो करने के लि□ क्लिक करें- https://twitter.com/Jansatta